एक भीषण स्मृति

पांडेय बेचन शर्मा

एक भीषण स्मृति

https://www.hindiadda.com/ek-bhishan-smrti/

'सुंदर गुलाब की तरह बच्चे थे। उनमें से अनेक के दूध के दाँत तक न टूटे थे। बेचारे बाल-विनोद की इच्छा में मिट्टी के ताशे (एक प्रकार का बाजा), छोटी-छोटी लकड़ियाँ और तालियाँ बजाते पंद्रह-बीस की संख्या में घूम रहे थे। यही उनका अपराध था। उस समय बनारस में 'मार्शल-लॉ' न था!

'पाँच-सात क्रूर-प्रकृति गोरों ने शांति-प्रिय नागरिकों के सर्वस्व - उन बालकों को पकड़कर फौजी अदालत में हाजिर किया। अरे! ये बच्चे बलवाई हैं? मैं तो भौचक्का हो गया। मेरी करुणा-पूर्ण एक दृष्टि विचारकों (जजों) के मुख की ओर और दूसरी प्रसिद्ध सेनापति नील की ओर - जिनके हृदय में शायद 'दया' के बैठने-भर को भी स्थान न था - दौड़ी। पर मैं केवल आँखों की सहायता से यह जानना चाहता था कि इन 'गरीबों की निधि' के भाग्यों का क्या फैसला होगा।

'गदर के दिनों में अपराधियों का फैसला सुनाने में उतनी देर भी न लगती थी, जितनी शराब का एक घूँट पीने में। आज्ञा हुई - 'सबको फाँसी!' हाय! हाय! गुलाब के फूल आग में झुलसाए जाएँगे? ये बच्चे, जिनके लिए एक तमाचा ही बंदूक से भी भयंकर है, फाँसी पर लटकाए जाएँगे? काँप उठा अंतःकरण। मनुष्यता छटपटाने लगी। आँखों से आँसुओं का स्रोत फूट पड़ा। एक 'मनुष्य' जज ने सेनापति की ओर डबडबाई आँखों से देखकर कहा - 'महाशय! जरा इनके ईश्वर के तरह पवित्र और प्रेम की तरह भोले मुखों की ओर देखिए। दया कीजिए।'

उत्तर मिला - 'कुछ नहीं। सबको फाँसी।'

'इस पर वह विचारक - अंगरेज विचारक - इस तरह रोने और बिलखने लगा, मानो उसी का बच्चा फाँसी पर लटकाया जानेवाला हो। वायुमंडल में करुणा भर गई, पत्थर पिघल गए, पर सेनापति नील टस-से-मस न हुए! 'माँ! बाबू! बाबू! हाय! हाय!' करते हुए अभागे हिंदुस्तानियों के लाल... क्या कहूँ? कैसे कहूँ? जो क्षण-भर पहले हँसते थे, सदा के लिए मौन धारण कर हमारी आँखों के सामने से उठ गए! ऐसा भयंकर दृश्य मैंने कभी नहीं देखा था।

'गदर (सन 1857) के दिनों में जो गोरी पलटनें बनारस में थीं, मैं उन्हीं में से एक में एक साधारण सैनिक था। उपर्युक्त घटना के दूसरे दिन की बात है। मैं अपनी बैठक में बैठा हुआ अपने दो वर्ष के छोटे बच्चे और प्रेममयी स्त्री का ध्यान कर रहा था। पहले दिन के हत्याकांड से मेरे हृदय को सख्त चोट लगी थी। मैं ईश्वर से प्रार्थना कर रहा था - 'प्रभो! मैं स्वदेश-सेवा के ध्यान से अपनी जन्म-भूमि छोड़कर, अपने जीवन के सुखों पर लात मारकर यहाँ विदेश में आया हूँ। मैं हमेशा ईमानदारी से काम करने की

कोशिश करता हूँ। देखना मेरी धरोहर की रक्षा करना।' इतने में मेरा मित्र फेडरिक आकर कहने लगा - 'राबर्ट! तैयारी करो भाई! सिपाहियों की तलाश से हमें बनारस के आस-पास के देहातों में जाना होगा।'

'मैंने एक लंबी साँस खींचकर कहा - 'दोस्त! जी करता है, इस्तीफा दे दूँ। मुझ से तो यह सब नहीं देखा जाता। भाई अगर यही 'सैनिकता' है, तो मैं ईश्वर से प्रार्थना करूँगा - वह मुझे कभी सैनिक न बनाए। क्या 'सैनिकता' का पर्याय 'कसाईपन' ही है?'

'हैलो! रॉबर्ट, तुम फिलॉसफर हुए जा रहे हो। इस समय, जब कि सब अंगरेज -सिपाही या क्लर्क, मर्चेंट या मैजिस्ट्रेट - फौज कर सहायता कर रहे हैं, और कर रहे हैं अंगरेज-द्रोहियों का दमन, तब तुम्हारे इस्तीफे की बात सुनकर कौन तुमसे सहानुभूति प्रकट कर सकता है? अभी मनुष्यता को हृदय में ही रक्खो भाई, बाहर निकालने से हास्यास्पद बनोगे।' - फेडरिक ने गंभीर मुस्किराहट के साथ कहा।

'वे गाँव - जिनके यहाँ हम 'प्रलय का संदेश' लेकर गए थे - दरिद्रता की तस्वीर थे! मिट्टी की दीवारों के हृदय फट गए थे, मानो वे हमसे कह रही थीं कि हम दुर्बलों को प्रलय का संदेश सुनाने क्यों आ रहे हो? हम तो स्वयं मरी जा रही हैं! वे दीवारें मांस-हीन हड्डियों की तरह खड़ी थीं, और उनके सिर पर बूढ़ियों के बालों की तरह सूखे तृण थे। उन्हीं तृणों पर, उन्हीं सूखी हड्डियों पर तो हमें अपनी भयानकता दिखानी थी। वैसी-वैसी अनेक झोपड़ियों को ही नहीं, कितने गाँवों को हमने 'डिजर्टेड-विलेज' बना दिया था, याद नहीं।

'गाँवों में 'बलवाई सिपाही' कहाँ थे? मुश्किल से किसी गाँव में दो-एक मिल जाते थे, अतः 'प्रलय का संदेश' निरीह ग्राम-वासियों को, छोटे-छोटे बच्चों को, कोमलांगी स्त्रियों को और अभागिनी बूढ़ियों को जबरदस्ती सुनना पड़ता था। चारो ओर हमारा (गोरों का) आतंक व्याप्त था। एक गाँव में आग लगने के समाचार से दस गाँव जन-शून्य हो जाते थे। फिर बेचारे ग्राम-निवासी भागते कहाँ? उन्हें तो चारों ओर त्रास, भय और मृत्यु ही दिखाई पड़ती थी।

'भागते हुए और भय से सामने आए ग्राम-वासियों को हम गिरफ्तार करते थे। एक-दो नहीं, सैकड़ों नहीं, हजार देहातियों की गिरफ्तारी होती थी! मैजिस्ट्रेट हमारे साथ ही था। चुटकी बजाते-बजाते फैसला हो जाता और ग्राम-वासियों में से कुछ तो भरपेट बेंतों से 'टिकटियों' पर पीटे जाते, और कुछ पेड़ों की डालियों पर फाँसी लगाकर लटका दिए जाते। जब कभी हम मैदान में सोते थे, तो सुबह उठने पर पेड़ों पर लटके हुए बीभत्स कंकालों के सिवा और किसी का मुख देखने को न मिलता था! बनारस - जिले

के न-जाने कितने चिरजीवी, अभागे वृक्ष बहुत दिनों तक अपने जल-दातओं और रक्षकों के, अपनी ही सहायता से, मारे जाने की बात, एक भीषण पाप की तरह, याद रक्खेंगे। उन्हें हमेशा इस बात का पश्चात्ताप रहेगा कि हम अपने पड़ोसियों एवं रक्षकों की हत्या में सहायक बनाए जाने के पहले ही गिरकर चूर-चूर क्यों न हो गए? अभागे वृक्षो!

'मैं यदि कवि होता, तो कहता कि उस दिन हिंदुस्तान के बादल व्यग्र होकर रो रहे थे। उन्हें हमारी दानवता के कारण जिसका वे कुछ बिगाड़ नहीं सकते थे, रोना पड़ रहा था। उनकी गर्जना उनके क्रोध की सूचना थी, पर वह दुर्बल का क्रोध था, अरण्य-रोदन था। बिजली रह-रहकर चमक रही थी, क्षोभ से काँप रही थी। जान पड़ता था, हमारे ऊपर टूट पड़ने के लिए उसका हृदय व्यग्र हो रहा था। पर उसमें इनती हिम्मत कहाँ कि हमारी दानवता का सामना करती। उसे हम पीस डालते!

'हमारे कपड़े एकदम भीग गए थे। इसके लिए भी ग्रामवासी ही उत्तरदायी थे। उन्हीं के लिए हमारे कपड़े भीगे थे न? सामने एक गाँव दिखाई पड़ा। कपड़े सुखाने के लिए उस गाँव में आग लगाना ही बहुत अच्छा जान पड़ा! कप्तान की आज्ञा हुई। फिर कौन रोकनेवाला था? देखते-देखते गाँव ज्वालामुखी का पर्याय बन गया! इधर हमने (हमारे प्रत्येक 'हमने' का अर्थ हमारे साथियों से है।) गाँव छोड़कर भागनेवालों पर सिपाहियों के विचार से गोली चलाना आरंभ किया।

'विपत्ति अकेली नहीं आती। गाँव में आग लगते ही पानी रुक गया, और हवा जोर पकड़ने लगी। हमारे साथ, जान पड़ता है, प्रकृति भी क्रूर हो गई। एकाएक एक घर के कोठे पर नजर पड़ी। हाय! हाय! एक बुढ़िया जल रही थी, और चिल्ला रही थी! मैंने अपने पार्श्व में फ्रेडरिक को खड़ा देखकर कहा - फ्रेड, उसे बचाओ भाई! मैं, वह देखो, उन बच्चों को बचाने की चेष्टा करता हूँ।

'बेचारा फ्रेडरिक बिना कोई उत्तर-प्रत्युत्तर किए बूढ़ी की सहायता को दौड़ा, और मैं बच्चों की मदद को। मैंने उन बच्चों के पास जाकर जो दृश्य देखा, कभी भूल नहीं सकता? घर में पुरुष एक भी न था। एक चारपाई पर कोई वृद्धा स्त्री पड़ी थी। उसके सिर की ओर चार-पाँच महीने का एक बच्चा छाती से लगाए कोई जवान औरत खड़ी अनाथों की तरह चिल्ला रही थी - और? और उसके चारों ओर चार साल से लेकर पंद्रह साल तक के लड़के 'हाय! हाय!' कर रहे थे। निर्दयता की मूर्ति बनकर अग्निदेव उस घर की गृहस्थी चाट रहे थे। दया का कहीं नाम तक न था!

'मैंने बूढ़ी को उठाकर घर के बाहर जाना चाहा, पर वह - हाय रे स्त्री का हृदय, माता का प्रेम - उन बच्चों को दिखाकर बोली - 'साहब!' पहले मेरे बच्चों को उबारिए! लाचार, मैंने सात साल के लड़के को पीठ पर, छोटे-छोटे दोनों को गोद में तथा पंद्रह वर्षवाले को हाथ की सहायता से उस घर के बाहर, सैनिकों की दृष्टि से दूर एक पेड़ के नीचे लाकर खड़ा किया। एक क्षण व्यर्थ न खोकर मैं तुरंत उस बूढ़ी और छोटे बच्चेवाली स्त्री की सहायता को दौड़ा।

'अब आग बहुत ही भीषण हो गई थी, घर में धुआँ भर गया था। मैंने युवती स्त्री का बच्चा माँगा, पर वह तो रोने लगी, देने को राजी ही न होती थी। अंत में मुझे बंदूक की धमकी देनी पड़ी। मैंने कहा - 'बच्चा दो, नहीं तो गोली मार दूँगा।'

'स्त्री का कपोल आँसुओं से तर हो गया था, हिचकी बँध गई थी। उसने कातर दृष्टि से देखते हुए मुझे अपना बच्चा दिया। मैंने बच्चे को छाती से चिपकाकर बूढ़ी को पीठ पर चढ़ाया और उस युवती को हाथ के सहारे किसी प्रकार घर से बाहर किया।

'घर से बाहर निकलकर जहाँ हम खड़े थे, वहाँ से कोई सौ गज की दूरी पर उस परिवार के चारों लड़के थे। वृद्धा को लेकर वहाँ जाने में कम-से-कम दस मिनट तो लगते ही। इधर वह (बूढ़ी), मारे भूख के तड़प रही थी, प्यास के कारण उसका गला सूख गया था।

'पॉकेट से कुछ बिस्कुट निकाल और अपनी पानी की बोतल सामने रख मैंने बूढ़ी से पानी पीने को कहा। पर हाय! उसका उत्तर सुनकर कलेजा मुँह को आ गया! वह बोली - 'बेटा, तुम्हारी रोटी और पानी पीने से हमारी जात चली जाएगी। रहने दो, ईश्वर तुम्हें युग-युग जीवित रक्खें, हमारे प्राण तो बचे।'

हृदय मुग्ध हो गया, ऐसी दृढ़ जाति! इतना जाति-प्रेम! यह हिंदुओं को ही शोभा देता है - संसार के इतिहास में एक यही घटना ला-मिसाल हो सकती है। मैं बूढ़ी और युवती स्त्री को साथ लेकर जहाँ लड़के थे, उसी ओर बढ़ा। अब युवती का बच्चा उसकी छाती में मुँह लगाए मुस्किरा रहा था। उस अभागे को क्या मालूम कि उसकी माता के हृदय पर इस समय क्या बीत रही है।

'मैंने, उस युवती ने और वृद्धा ने एक साथ ही देखा कि कुछ गोरे उपर्युक्त पंद्रह वर्ष के लड़के को एक पेड़ से लटकाकर उसका महाप्रयाण देख रहे हैं! बूढ़ी - भूखी, प्यासी और दुर्बल बूढ़ी - शेरनी की तरह 'हाय! हाय!' दहाड़ती हुई उधर ही झपटी। न-जाने कहाँ की शक्ति उसके पैरों में भर गई। हम सब भी दौड़े। पर इससे क्या होता था? हमारे पहुँचने के पहले ही अभागे लड़के के प्राण कूच कर गए थे! बेचारी बूढ़ी को कुछ धक्के ही मिले,

उसका 'लाल' नहीं; युवती को कुछ निर्लज्जता-पूर्ण कटाक्ष ही मिले, उसका प्रियजन नहीं, और मुझे एक भयंकर अशांति ही मिली, सफल परोपकार की शांति नहीं! मैंने चारों ओर एक निराशामयी दृष्टि से देखा - ओह! सैकड़ों स्त्रियाँ और कई दर्जन बच्चे अपने करुण चीत्कार से आकाश का हृदय हिला रहे थे!

'मैं बेहोश होकर गिर पड़ा!'

हमारे (लेखक के) एक स्वर्गीय श्रद्धेय मित्र ने, जो इंग्लैंड-रिटर्न्ड थे, लकड़पन में हमें यह कहानी सुनाई थी। वहाँ सहृदय रॉबर्ट से उनकी मित्रता हो गई थी। पर वह रॉबर्ट, जवान सैनिक रॉबर्ट नहीं, साठ वर्ष का बूढ़ा गृहस्थ रॉबर्ट था।

यद्यपि उपर्युक्त कहानी सुने एक युग हो गया, पर यह हमारे हृदय पर 'एक भीषण स्मृति' की तरह तब से अद्यावधि विराजमान है। क्यों न हो?